

प्रत्यभिज्ञा (काशमीर शैवदर्शन के आलोक में)

मंगत राम

शोधार्थी, संस्कृत पालि एवं प्राकृत विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र, हरियाणा, भारत।

प्रस्तावना

भारतीय दार्शनिक चिन्तन का प्रमुख लक्ष्य प्रमाता के स्वरूप का अवबोधन है, जिसकी प्राप्ति हेतु लगभग सभी दार्शनिक सम्प्रदाय¹ किसी न किसी रूप में प्रत्यभिज्ञा की चर्चा अवश्य करते हैं। यद्यपि उनकी पद्धतियां पृथक्-पृथक् हैं, पर गन्तव्य एक है। किन्तु इस पद्धति व गन्तव्य में साम्य स्थापित करने वाली, नियमों से भिन्न शिवात्मवादी आगमिक विचारधारा है, जहाँ साधन और साध्य, इन द्विविध रूपों में प्रत्यभिज्ञा दृष्टिगत होती है। काशमीर शिवाद्वयवाद इसी तांत्रिक विचारधारा का एक अंग है, जिसका पूरा कलेवर ही प्रत्यभिज्ञा निर्मित है और यही कारण है कि जहाँ अन्य दर्शन मात्र स्थिर आत्मा की सिद्धि हेतु या फिर यों कहे कि बौद्धों से अपने वैशिष्ट्य स्थापना हेतु प्रत्यभिज्ञा की चर्चा करते हैं, वहाँ काशमीर शैवदर्शन में हर चीज प्रत्यभिज्ञा के रंग में रंगी हुई है। फलतः शिवाद्वयवाद में प्रत्यभिज्ञा के अतुलित महत्त्व को देखते हुए, उनके स्वरूप, विभिन्न स्तरों पर उसकी अवस्थिति व अन्य दर्शनों से उसके वैशिष्ट्य आदि का विवेचन आवश्यक है।

सर्वप्रथम व्युत्पत्ति की दृष्टि से देखें तो भारतीय दर्शनों में प्रत्यभिज्ञा शब्द की द्विविध व्युत्पत्तियाँ मिलती हैं-

1. प्रति + अभिज्ञा²
2. प्रति + अभि + ज्ञा³

यद्यपि दोनों ही व्युत्पत्तियाँ 'पहचान' रूप एक ही अभिप्राय की द्योतक हैं, पर उनकी विद्या व क्षेत्र भिन्न-भिन्न है।

प्रथम के अनुसार, जिसमें अभिज्ञान लौट आया है तथा जो संस्कारसहकृत प्रत्यक्ष ज्ञान का एक भेद है, वह प्रत्यभिज्ञान है, उसका क्षेत्र मात्र जागतिक संदर्भपर्यन्त परिसीमित है; जबकि द्वितीय व्युत्पत्ति प्रथम दृष्टिकोण के परिग्रहणपूर्वक चेतना की पुनर्प्राप्तिरूप अभिप्राय को भी स्वयं में समाहित किये हुए है, फलतः यह जगत् व उससे भी परे हमें ले जाती है। प्रथम का सम्बन्ध भारतीय दर्शन की सभी शाखाओं से है जबकि द्वितीय पर काशमीर शैवदर्शन का एकाधिकार है। अभिनवगुप्त के अनुसार प्रत्यभिज्ञा में 'प्रति' उपसर्ग प्रतिप अर्थ में, 'अभि' उपसर्ग आभिमुख्य अर्थ में 'ज्ञा' धातु अवबोधन अर्थ में प्रयुक्त हुई है⁴। साथ ही 'प्रति' व 'अभि' उपसर्गों के मध्य आनन्तर्य, अन्विति या कार्यकारणभाव रूप सम्बन्ध भी है। 'अभि' 'प्रति' की व्याख्या है, प्रति का प्रतिफल है। 'प्रति' बताता है कि कोई चीज पलट जाती है और 'अभि' बताता है कि पलट जाने की प्रतिक्रियास्वरूप वह वस्तु सामने आ जाती है, तथा 'ज्ञा' यह बताता है कि जो वस्तु पलटकर सामने आ जाती है, उसी का ज्ञान करना है⁵। यानी पूर्व घटित का सम्मुख उपस्थित रूप में ज्ञान करना ही प्रत्यभिज्ञान है, जिसे शिवाद्वयवाद की दार्शनिक शब्दावली में भात और भासमान के अनुसंधान के रूप में परिभाषित किया गया है⁶। उदाहरण के लिए जिस

यज्ञदत्त को हमने चारबाग में देखा था, उसी को आज लालबाग में देखकर यदि हमें यह स्मृति हो जाए कि वह वही यज्ञदत्त है, तो इस प्रकार का ज्ञान ही प्रत्यभिज्ञा कहलाता है। पाश्चात्य-दर्शन⁷ व मनोविज्ञान⁸ में इसी अभिप्राय में रिक्कनीशन (Recognition) शब्द का प्रयोग मिलता है, किन्तु पर्याय रूप में प्रयुक्त होने पर भी प्रत्यभिज्ञा व रिक्कनीशन की दार्शनिक परिधि में समता नहीं है। एम.एसीचटर्जी के अनुसार यह शब्द द्विविध सन्दर्भों में प्रयुक्त होता है-

1. किसी वस्तु के स्वभाव या वैशिष्ट्य का अवबोधन।
2. किसी वस्तु का पूर्वज्ञात रूप में ज्ञान करना।

रिक्कनीशन की इन द्विविध व्याख्याओं में से प्रत्यभिज्ञा शब्द का प्रयोग मात्र द्वितीय संदर्भ में ही किया जाता है। परन्तु ऐसी विवेचना भले ही सामान्यतः अन्य भारतीय दर्शनों के संदर्भ में संगत बैठ जाती, किन्तु काशमीर शैवदर्शन के संदर्भ में यह उचित नहीं है, क्योंकि यहाँ प्रत्यभिज्ञा का निरूपण उक्त द्विविध संदर्भों में मिलता है। प्रत्यभिज्ञा के जो चार दृष्टान्त :- सोऽयं चैत्रः, नृपस्य पुत्रः, कामिन्यः नायकः तथा ईश्वरोऽहम् मिलते हैं, उनमें से प्रथम दो दृष्टान्त रिक्कनीशन की दूसरी व्याख्या से सम्बद्ध हैं तथा अन्तिम दो दृष्टान्त प्रथम व्याख्या से घटादि शब्द घटादि पदार्थ से स्वीकृत होकर ही व्यवहृत होता है। यहाँ शब्द और अर्थ का उक्त एकात्मिकरण ही प्रत्यभिज्ञान है। इस मत से न केवल काशमीर शैवदर्शन अपितु भारतीय दार्शनिक सम्प्रदाय भी प्रायः एक मत है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से यह परिलक्षित होता है कि प्रत्यभिज्ञा काशमीर शैवदर्शन का सर्वाधिक व्यापक व जटिल सिद्धान्त है। इसका कारण है कि यहाँ ज्ञान-मीमांसा के क्षेत्र से संबद्ध एक साधारण से प्रत्यय को समस्त दार्शनिक संरचना का आधार बनाया गया है। शैव दार्शनिक इसे एक समन्वयवादी प्रक्रिया के रूप में प्रस्तुत करते हैं, जिसमें सब कुछ समाविष्ट है। इसके पूर्व व इसके पश्चात् शून्य के सिवा कुछ नहीं। यही कारण है कि ज्ञान का क्षेत्र हो या परमार्थ का या फिर साधना का, सबका मूल, सबका फल प्रत्यभिज्ञा ही है, और यही निमित्त है, काशमीर शैवदर्शन के 'प्रत्यभिज्ञान दर्शन' संज्ञक अभिधान में।

संदर्भ

1. 'केवल चार्वाक, निम्बार्क व माध्व सम्प्रदाय प्रमातृ-सिद्धि में प्रत्यभिज्ञा की चर्चा नहीं करते' -काशमीर शिवाद्वयवाद की मूल अवधारणाएँ अ-11, पृ० 165
2. प्रतिगता अभिज्ञाम् इति प्रत्यभिज्ञा। अभिज्ञानरूपे संस्कारसहकारेव जनिते प्रत्यक्षभेदे यथा सोऽयं देवदत्त इत्यादि - वाचस्पत्यम् पृ० 4
3. Apte, Sanskrit-English Dictionary. P.655; Monier-

Willians, Sanskrit-English Dictionary, P.675.

4. 4. प्रतिशब्दस्य प्रतीपमित्यर्थः । अभिशब्दस्याभिमुख्यम् ज्ञाशब्दस्य ज्ञानम् । तेन पूर्वज्ञानस्य मध्ये विस्मृतस्य पुनराभिमुख्येन ज्ञानं प्रत्यभिज्ञेति । यथा सोऽयं देवदत्तः । -भास्करी भाग 1, पृ० 36
5. प्रतीपमात्माभिमुख्येन ज्ञानं प्रकाशः प्रत्यभिज्ञा - ईईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिन(भास्करी के साथ प्रकाशित भाग 1, पृ० 36-37)
6. पूर्व भातमद्य भासमानं तयोर्यदनुसंधानम् -एकीकरणम्, तदात्मा यस्याः तादृशी -भास्करी, भाग 1, पृ० 361
7. Dictionary of philosophy, P. 265.
8. Dictionary of philosophy, P. 238.